भारतीय समाजवाद की रूपरेखा

लेखक

स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

रचयिता

"ज्ञान के उद्यान में", "योरुप की सुखद स्मृतियाँ",
"यात्री-मित्र", "हिन्दू धर्म की विशेषतायें",
"नई दुनियाँ के मेरे अद्भुत संस्मरण"
"देव-चतुर्दशी", "लेखन-कला",
इत्यादि, इत्यादि।

❁ जनवरी, सन् १९३९ ❁

प्रथम संस्करण

मिलने का पता—
मैनेजर—सत्यज्ञान-निकेतन
ज्वालापुर (यू० पी०)

मूल्य तीन आने

प्रकाशक

सत्यज्ञान-निकेतन,

ज्वालापुर (यू० पी०)

बाल

फ़तेह!

कुछ पंक्तियाँ

समाजवाद के सम्बन्ध में आजकल देश में बड़ी चर्चा चल रही है। नवयुवक और युवतियाँ ग़ैरज़िम्मेदार आदमियों द्वारा लिखे गये साम्यवाद सम्बन्धी साहित्य को पढ़कर बहकी जा रही हैं। कांग्रेस के अन्दर भी कुछ ऐसे विचार के लोग अपनी पार्टी बनाकर मज़दूरों और किसानों को कांग्रेस के विरुद्ध बहका रहे हैं। देश को भयङ्कर ख़तरे में पड़ते हुये देखकर मैंने इस पुस्तिका को जनसाधारण में प्रचारार्थ लिखा है ताकि लोग पूर्व और पश्चिम के समाजवाद का मुक़ाबला कर सकें और रूसी कम्यूनिज़्म के दोषों को स्पष्टतया जान सकें।

आशा है यह छोटी सी किताब देश के शुभचिन्तकों को ख़ूब पसन्द आयेगी और इसके द्वारा जनता का बड़ा कल्याण होगा।

सत्यज्ञान-निकेतन,
ज्वालापुर (यू०पी०)
[illegible]री सन् १९३९

विनीत

सत्यदेव परिव्राजक

विषय-सूची

भारतीय समाजवाद की रूपरेखा

पहला अध्याय

जीवन की सर्वव्यापक समस्या

हम कहाँ खड़े हैं ? संसार-मार्ग पर चलने वाला यात्री हज़रत ईसा की इस बीसवीं शताब्दी मे अपने सामने आज कौन सी ऐसी सर्वव्यापक समस्या देखता है, जिसने उसके इर्दगिर्द खड़े हुए सभी यात्रियों को ग्रसा हुआ है, जिसके कारण वह बड़ी अशान्ति, तिलमिलाहट और स्वार्थपरता का वातावरण चारों ओर फैला हुआ पाता है ? यह सच है कि हम सब इस दुनियाँ में ज्ञान-संचय करने के लिये आये हैं, यह भी ठीक है कि हमारा शरीर नीरोग होना चाहिये और हम यह भी स्वीकार करते हैं कि यात्री का लक्ष्य है दृष्ट से अदृष्ट की ओर जाना, परन्तु आज यहाँ तो सबसे पहले रोटी का प्रश्न मुँह बाये खड़ा है। सड़क पर चलते हुए जहाँ कहीं लोगबाग एकत्रित हैं, वार्तालाप करते हैं, वादविवाद हो रहा है, वहाँ यही प्रश्न पूछा जाता है—"रोटी का प्रश्न कैसे हल होगा ?" लोग कहते हैं कि हम

ज्ञानियों के ज्ञान-गपोड़े सुनना नहीं चाहते, पहले हमारी पेट की ज्वाला बुझनी चाहिए। सचमुच इस युग की यह सर्वव्यापक समस्या है, जिस पर आज भूमण्डल के विद्वानों को विचार करना ही चाहिये।

हमारे जैसे ज्ञानमार्गी यात्री भी आज इस समस्या पर चिन्ता करते हुए दिखाई देते हैं। अर्थशास्त्रियों का यह दावा है कि जो कोई आचार्य इस महान् प्रश्न को हल करेगा, उसी की बात सब जगह सुनी जायेगी ; इसलिये हमारे लिये भी यह आवश्यक होगया है कि हम अपना कुछ क़ीमती समय इस ओर भी लगावें और इस समस्या के सम्बन्ध में जो हल हमारे पास है, उसे संक्षेप में सभ्य संसार के सामने रक्खें। यद्यपि यह एक स्वतन्त्र विषय है, इस पर विस्तार से लिखने के लिये अलग ग्रन्थ चाहिये, किन्तु हम जनसाधारण की सुविधा के लिये थोड़े में ही इस विषय को समझाने की चेष्टा करते हैं ताकि इसे ट्रेक्ट के रूप में छपवा कर लोगों में बाँटा जा सके।

देखिये हम हैं बुद्धिवादी—हम आँखें बन्द कर किसी के पीछे नहीं चलते—हमारी है जागरूक आत्मा और अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व। हमें चारों ओर भली भाँति देखकर, अपनी ज़मीन टटोलकर, सब प्रश्नों को समझते हुए आगे चलना है। हम शुष्क ज्ञानमार्गी नहीं हैं, जो केवल अपने ही मोक्ष की चिन्ता करें, अपना ही पेट भरें, "आप

ुखी तो सब सुखी" तथा "आप मरे तो जग-प्रलय" की उक्तियों को मानें। हम मानते हैं सेवा और बलिदान के मार्ग को, लेकिन वह आश्रित है सत्यज्ञान के नियमों पर। हमें जीवन की इस दैनिक समस्या पर अपने विचार कहने ही चाहियें। बुद्धिवाद की ार्थकता इसी में है कि उसको मानने वाला यात्री किसी सिद्धान्त ो नया अथवा पुराना होने की वजह से स्वीकार अथवा त्याग न दे; बड़े से बड़े महापुरुष को निर्भ्रान्त न माने; किसी भी धार्मिक ग्रन्थ को ईश्वरीय वाक्य कहकर अन्तिम प्रमाण के रूप में माथे पर न चढ़ाये; किसी के साथ अन्याय अथवा अत्याचार रने पर विश्वास न करे—उसका रास्ता हो सत्य और न्याय का, म और विकास का, सहानुभूति और सेवा का और उन साधनों ो तलाश करने का, जो इस रहस्यपूर्ण ब्रह्माण्ड के विषय में अधिक । अधिक प्रकाश डालते हों। ऐसी अवस्था में हम वर्तमानकाल ी इस सर्वव्यापक समस्या के प्रति उदासीन नहीं हो सकते। में इसके सम्बन्ध में मुँह खोलना ही चाहिये। हमारी दिमाग़ी याशी की जीवन-फ़िलॉसोफ़ी नहीं है; हम हैं व्यवहारिक धर्म मानने वाले। हम आज जीवन-यात्रा की सड़क के उस कोने र आकर खड़े हुए हैं, जहाँ बड़ा भारी चौक है और कई रास्ते टते हैं। हमें भूखे-नंगे लोगों ने घेर लिया है। वे हमारी ज्ञान की ातें सुनना नहीं चाहते। हमें नीरोग और हृष्टपुष्ट देखकर, हमारे हरे पर प्रसन्नता और शान्ति की मुद्रा पाकर और सबके प्रति ारा सहनशीलता का भाव देखकर वे हमसे अपनी समस्या

हल करवाना चाहते हैं। हम भी देखते हैं कि इस विशाल चौक में भूखों की संख्या अधिक है और वे शिष्टाचार, संस्कृति और सभ्यता को तिलाञ्जलि देकर हिंसक पशुओं जैसा स्वभाव बना चुके हैं। चौक में खड़े हुए वे किसी भी भलेमानस को आगे जाने नहीं देते; वे उसके कपड़े उतारने पर उतारू हैं और पूञ्जीवादी कहकर उसकी खिल्ली उड़ाते हैं। जब तक ऐसे गुण्डापन के वातावरण को शान्त न किया जायेगा, तब तक सत्यज्ञान की बात कौन सुनेगा। हमें पहले इस हौहल्ले को मिटाना चाहिये और रोटी के सवाल का उपयुक्त हल इन्हें बतला देना उचित है ताकि इनकी बुद्धि ठिकाने आये और ये मानवता की ओर जा सकें। यही सोच-विचार कर हम इस चौक में खड़े होकर सत्सङ्ग का प्रेम-निमन्त्रण देते हैं और नई तथा पुरानी दुनियाँ में फैले हुए इस आर्थिक संकट के कारणों पर अपने विचार जिज्ञासुओं को सुनाते हैं। समाज के इस क्षुभित वातावरण को शान्त कर तब हम ईश्वर-प्राप्ति के महत्वपूर्ण विषय पर अपने अनुभव कह सकेंगे।

यही निश्चय कर अब हम रोटी के प्रश्न पर अपने विचार प्रगट करते हैं। हमसे पहले बड़े बड़े विद्वानों ने इस पर माथा मारा है; प्रिन्स कुरुपाटकिन, कार्लमार्क्स, फ्रेडरिक एञ्जल्स और लैनिन जैसे क्रान्तिकारियों ने अपनी अपनी योजनायें लिखकर संसार में अशान्ति के बवण्डर खड़े कर दिये हैं। इसलिये हमारा परम कर्तव्य है कि आर्य-संस्कृति के प्रचारक हम उस तूफान को शान्त करें और बहकी हुई जनता को विनयपूर्वक समझावें,

उसके सामने खुली खुली बातें कहें और हमारा जो तुच्छ अनुभव इस विषय में है, उसे उसकी सेवा में अर्पित कर दें। इस कर्तव्य का पालन करना हम अपना धर्म समझते हैं। हमारे प्रेमी पाठक भी ध्यान से इस विषय पर हमारे विचारों को सहानुभूतिपूर्वक और पक्षपातरहित होकर सुनें। हमारा दृढ़ विश्वास है कि हमारा निवेदन न्यायशील लोगों के हृदय को अपील करेगा और उन्हें ज्ञानमार्ग की ओर लायेगा।

दूसरा अध्याय

रोटी का सवाल

"संजीवनी बूटी" के दूसरे भाग को हमने प्रारम्भ किया है ज्ञान की खान की खोज से—खोज उसकी, जिसके आश्चर्यजनक कामों के कारण सारा संसार चकित हो रहा है। उस अज्ञेय की खोज करना मानव-जीवनका लक्ष्य है और भूमण्डलके सब विद्वान् अपनी प्रौढ़ावस्था में पहुँचकर सदा उसी की तलाश करते हैं।

उस पुस्तक में हमने प्रचलित विचारधाराओं पर दृष्टि डाली है और अपने अनुभवों के अनुसार उनकी विवेचना की है। हमने भक्तिमार्ग और ज्ञानमार्ग, इन दो भिन्न विचारधाराओं पर तुलनात्मक प्रकाश डाला है। हमने यह बतलाया है कि ज्ञान-मार्ग ही जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य है और इसी पर चलने से मानव जाति का कल्याण हो सकता है। व्यक्ति का विकास तभी होगा, यदि वह स्वतन्त्र विचार करना सीखेगा और अपनी बुद्धि को दूसरों के हवाले न कर अपने से अधिक अनुभवी पथिकों का आशीर्वाद लेता हुआ आगे बढ़ेगा। किस प्रकार सत्-असत् विवेकिनी बुद्धि ब्रह्म के अन्वेषण में हमारी सहायक हो सकती है, इसका भी ज़िक्र हमने उस ग्रन्थ में किया है और अन्त में यह कहा है कि बुद्धिवाद की सहायता से हमें विभिन्नता में एकता स्थापित करने का अभ्यास डालना चाहिये।

उसी पुस्तक में आगे चलकर हमने बुद्धिवाद के आचार्य परम तपस्वी सन्त सुकरात के दर्शन पाठकों को कराये हैं और यह बतलाया है कि ज्ञान-पथ पर चलने वाले यात्री को अपने ऊपर विश्वास कर, प्रकाश के लिये हृदय-द्वार खोल प्रत्येक वस्तु के गुण-दोष परखकर आगे बढ़ना चाहिये। च्यूँकि इन सब पुरुषार्थों का साधन नीरोग शरीर है, इसलिये पहले उसकी तन्दुरुस्ती के नियम जान लेने आवश्यक हैं। हमने उस ग्रन्थ में अपनी अनुभूति के आधार पर कई अध्यायों में भिन्न भिन्न कसरतों का भी वर्णन किया है और इन्द्रियों को किस प्रकार सुरक्षित रखना चाहिये, इसके ढग भी बतलाये हैं; इतना ही नहीं बल्कि खाद्य पदार्थों के विषय में भी चर्चा की है। इसके बाद हमने बुद्धिवाद के असली स्वरूप को दर्शाया है। पहले मनुष्य की जिज्ञासा, दूसरा उसका परमावश्यक साधन शरीर, तीसरी बुराई-भलाई पहिचानने वाली बुद्धि और चौथी उस शरीर को शक्ति प्रदान करने वाली रोटी-जीवन के विकास की इन सीढ़ियों की मीमांसा हम उस पुस्त में कर चुके हैं, केवल रह गई थी रोटी, जिसके सम्बन्ध में इस पुस्तक में हम अपने विचार प्रगट करते हैं। वैज्ञानिक युग के पहले रोटी की मारामारी तो थी, लेकिन इतनी भीषण नहीं; समाज में विषमता तो थी, किन्तु उसमें सङ्गठित स्वार्थ की मात्रा इस दरजे तक नहीं थी; हममें बुद्धि का विकास तो ठीक मात्रा में हुआ, किन्तु उसके साथ साथ उसी दरजे तक हम मानवता में आगे नहीं बढ़े अर्थात् हृदय और मस्तिष्क का जो सुन्दर सम

विकास होना चाहिये था, वह नहीं हुआ, इसीलिए रोटी का भयंकर प्रश्न आज समाज को ऐसा विचलित कर रहा है।

असल में हुआ यह है कि वैज्ञानिक युग की मार खाये हुए लोग आज रोटी के लिये बेचैन हो उठे हैं। प्रतिकारस्वरूप बुद्धिवाद ने उनके हृदय से दया-मया को दूर भगा दिया है; वे ईश्वर सम्बन्धी बातें सुनना नहीं चाहते, क्योंकि "ईश्वर, ईश्वर!" चिल्लाने वालों ने ही तो उनके साथ अत्याचार किये थे और धर्म के ठेकेदारों ने ही तो उन्हें क्रीतदास बनाया है। फिर भला वे उधर की ओर कैसे रुख कर सकते हैं? उनकी भूख यदि पहले २० डिग्री की थी तो प्रतिहिंसा की अग्नि ने उसे १०५ डिग्री तक पहुँचा दिया है। वे होगये हैं बावले और उन्होंने खो दिया है अपना स्वाभाविक विवेक। इस कारण इन भूखों ने अपनी एक अलग जीवन-फ़िलासोफ़ी घड़ ली है और उसका नाम रक्खा है—समाजवाद। अत्याचारी पूँजीपतियों की खोज करते करते, उनके विनाश की माला जपते जपते, जब उनके हाथ यह नया पश्चिम का वाद लगा तो वे मारे खुशी के फूले न समाये और लगे उसे चूमने चाटने।

इनका यह नया समाजवाद क्या है? इन सोशलिस्टों के सिद्धान्तानुसार—"पूँजी ही मनुष्य के सारे दुःखों का मूल कारण है। पूँजीपति जनता को ठगकर धन के साधनों को अपने वश में कर लेते हैं और उसी के द्वारा शक्ति प्राप्त कर जनसाधारण को स्वेच्छानुकूल नाच नचाते हैं।" वे कहते हैं—"इन पूँजीपतियों ने ब्राह्मणों, मौलवियों और पादरियों को पैसा देकर अपनी स्वार्थ-

सिद्धि के अनुकूल धर्म के नियम बनाये हैं और उस धर्म का सब से बड़ा देवता ईश्वर को ठहरा दिया है। जनता को अपने जाल में फँसाये रखने के लिये ये पूँजीपति बनाते हैं मन्दिर, मस्जिद और गिर्जे और जनता को वहाँ बुलाकर स्वार्थानुकूल उपदेश सुनाकर उसे अपनी कठपुतली बना लेते हैं। पुजारी होता है इनका नौकर, बस वह उन्हीं के अनुकूल सब मन्त्रणा देता है। इसलिये वर्तमान समाज में फैले हुए जितने नैतिक नियम, शासन सम्बन्धी बातें, सांस्कृतिक सूत्र और भक्ति के गीत हैं, वह सब पूँजीवाद का मायाजाल है, यह जनता को मनमाने ढङ्ग से ठगने की कुत्सित चाल है; इसलिये पूँजीवाद को जड़-मूल से नष्ट कर, पूँजीपतियों के मायाजाल को छिन्न-भिन्न कर धन के साधनों पर पूरा कब्ज़ा समाज का होना चाहिये ताकि धन व्यक्ति के हाथ में पड़कर कोई शरारत न कर सके और वह समाज के सब सदस्यों को बराबर का लाभ पहुँचावे। जब पूँजीवाद नष्ट हो जायेगा तो कोई धनवान नहीं होगा; जब धनवान् नहीं होगा तो "धनवान् बलवान् लोके" की उक्ति मिथ्या हो जायेगी, समाज के सारे सदस्य एक जैसा दरजा पायेंगे, कोई किसी पर अत्याचार न कर सकेगा और सबको बराबर के अवसर तथा साधन उन्नति करने के लिये मिलेंगे।" यह है थोड़े में वर्तमानकाल के समाजवाद की रीढ़ की हड्डी।

यद्यपि धन को तमाम दुःखों का कारण पहले के लोगों ने भी माना था और उन्होंने भी बड़ी खोज के बाद धन-संग्रह करने

वालों को महास्वार्थी और अविवेकी ठहराया था, लेकिन वे उसका इलाज वैराग्य की दस्तावर गोलियों द्वारा करते थे। वे धनिकों को बराबर दया और अनुकम्पा का उपदेश देते थे, दूसरे लोक के सब्ज़ बाग दिखलाकर दान की महिमा का बखान करते थे और 'परोपकाराय सतां विभूतयः' की माला पहिनाकर विषमता को भगाने का प्रयत्न करते थे; लेकिन मालूम होता है कि वैज्ञानिक युग ने वैराग्य का गला घोंट दिया है। उसने ज़रूरतें बढ़ाकर पूँजीवाद की शक्ति में बिजली भर दी है। परिणामस्वरूप पूँजी के बड़े बड़े ढेर चुने हुए स्थानों में लग गये हैं और अधिकांश जनता भूख से विचलित होकर "त्राहि मां! त्राहि मां!!" कर उठी है।

सभ्य संसार की ऐसी सामाजिक परिस्थिति में आज हम आर्यों के ज्ञानमार्ग की घोषणा करने लगे हैं और हमारा यह दावा है कि केवल ज्ञानमार्ग ही रोटी के सवाल को हल करेगा। ज़रूरतों को बढ़ाने वाला वैज्ञानिक युग और प्रतिहिंसाकारी समाजवाद कभी भी मानव-जाति का कल्याण नहीं कर सकता। लैनिन की योजनायें सब धरी रह जायेंगी, कार्लमार्क्स के मन के मोदक सब फीके पड़ जायेंगे, जब आवश्यकताओं की तृष्णाओं से व्याकुल समाजवादी नेता शासन-सूत्र सम्भालेंगे। आख़िर धन कहीं तो एकत्रित होगा; प्राइवेट व्यक्तियों के पास न सही, समाज के पास ही सही; आख़िर उस समाज पर शासन करने वाले इने-गिने मनुष्य ही तो होंगे! जब वे भवनों में रहेंगे, मोटरों में

घूमेंगे, वायुयानों में उड़ेंगे और फ़ैशनेबल पोशाकें पहिनेंगे तो वह रुपया कहाँ से आवेगा? अरे, उन्हें बीमारी-ठीमारी के लिये, बुढ़ापे के दिन काटने के हेतु संग्रह करना होगा कि नहीं और फिर व्यक्तियों में जो पारस्परिक राग-द्वेष होता है, राक्षसी डाह होती है और स्वार्थरूपी प्रेम होता है—मानव-स्वभाव के ये पुराने शत्रु क्या कुरुपाटकिन के समाजवाद की लच्छेदार बातें सुनकर ही काफ़ूर हो जायेंगे? यदि ऐसा हो सकता होता तब संसार कभी का स्वर्ग बन जाता और विषमता के तूफ़ान हमेशा के लिये शान्त हो जाते।

अरे भैया, ज़रा समाजवादी रूस की ओर निहारिये। वहाँ क्या हो रहा है? प्रतिहिंसावादी उस लैनिन ने लाखों नर-नारियों की हत्यायें की थीं और आज स्टेलिन चुनचुन कर अपने पुराने साथियों को मौत के घाट उतार रहा है। ऐसा क्यों है? वही पैशाचिनी ईर्षा-डाह, वही राजमद का भूत, वही अविश्वास के कैकेई-कीटाणु, जो स्वार्थी मनुष्य के साथ रहते हैं, वहाँ भी अपनी दुर्गन्ध फैला रहे हैं। रूस में आज मास्को के दरवाज़े पर खड़ा हुआ पूञ्जीवाद स्टेलिन को मुँह चिढ़ा रहा है और कह रहा है—"मुझ से छूटकर जाओगे कहाँ बच्चा!"

नहीं नहीं, आजकल का समाजवाद हमारी विषमता को दूर नहीं कर सकता; उलटा वह हमें पशुपन की ओर ले जायेगा। वह रोटी के सवाल को हल नहीं करेगा, बल्कि मशीन की तरह हमें हृदयशून्य बना देगा; वह हमारे लिये समता का राज्य नहीं

लायेगा, बल्कि हमें समाजवादियों का क्रीतदास बना देगा। अरे मेरे देश के लोगो, कार्लमार्क्स के समाजवाद की चकाचौंध में मत फँसिये और न लैनिन के सांसारिक स्वर्ग की गप्पें सुनिये। अपने व्यक्तित्व का नाश कर तुममें रह ही क्या जायेगा? रूढ़िवादी लोग तुम्हें भाग्य की शराब पिलाकर ज्ञानशून्य किया करते थे, लैनिन के समाजवादी तुम्हारा व्यक्तित्व मिटाकर तुम्हें मिट्टी का माधो बना देना चाहते हैं ताकि तुममें चेतना-शक्ति ही न रहे। साम्राज्यवादी तुम्हें अपना क्रीतदास बनाकर देश-हित के नाम पर तुम्हारी कमाई खाते हैं और ये बोलशिविक लोग तुम्हारा नामों-निशान ख़त्म कर तुम्हारी पीठ पर सवार होते हैं और चाबुक से तुम्हें हाँकते हैं।

अरे, इनके समाजवाद को दिन ही कितने हुए हैं तो भी इनके ख़ूनी कारनामों का इतिहास तो देखिये। ऐसा हिंसक समाजवाद कभी भी तुम्हारी रोटी के प्रश्न को हल नहीं कर सकता और नाही यह इस विषमता के बवण्डर को शान्त कर सकता है, अलबत्ता यह तो तुम्हारी ज़रूरतों को बढ़ाकर तुम्हारे पशुपन के संस्कारों की अग्नि को प्रज्वलित करेगा। संसार में फैले हुए वर्तमान आर्थिक संकट के कारण सोशलिज्म की ये ध्वनियाँ तुम्हें बड़ी प्यारी लगती हैं और तुम इन सोशलिस्टों को स्वर्ग से आये हुए देवदूत मानने लगे हो, लेकिन यदि तुम अँग्रेज़ी की इस कहावत के अनुसार—"Scratch a Russian and you will find a Tartar अर्थात किसी रूसी की थोड़ी सी

परीक्षा कीजिये तो तुम्हें फ़ौरन पता लगेगा कि वह तातारी है"—ये सोशलिस्ट भी ऊपर से बने हुए समाजवादी हैं और अन्दर से पक्के कम्यूनिस्ट हैं, जो लाखों वर्षों की संग्रहीत मानवी सम्पत्ति को लुटाकर संसार में पशु-राज्य लाना चाहते है। इनके अन्दर छिपे हुए मनोविकार और विषय-भोग की वासनायें बड़े ज़ोर से भभक उठी हैं, क्योंकि इन्हें पता लग गया है कि वे स्वाधीनता की आड़ में स्वच्छन्दता का शासन क़ायम कर सकते हैं। इस वैज्ञानिक युग में इन्हें वैज्ञानिक ढङ्ग से वाममार्ग चलाने की विधि मालूम होगई है। यही कारण है कि जो आज भारतवर्ष के हमारे ये सोशलिस्ट नौजवान शिष्टाचार से कोसों दूर भाग रहे हैं; इन्हें न तो श्रद्धा है विद्वानों की और न इनके हृदय में आदर है बड़े-बूढ़ों का। कार्लमार्क्स और लैनिन को अपने पैग़म्बर मानकर ये लोग असभ्यता का नङ्गा नृत्य करने पर उतारू हुए हैं और सभी धार्मिक नैतिक अथवा सामाजिक नियमों को दक़ियानूसी रूढ़िवाद बतला कर उसकी खिल्ली उड़ाते हैं। शुतुर बेमुहार की तरह ये जा रहे हैं अपनी मनमानी चाल पर और रह नहीं गया इनके अन्दर किसी सामाजिक नियम का डर। अपने विरोधियों को नीचा दिखाने के लिये सब प्रकार का गुण्डापन इनमें जायज़ है और सामाजिक संगठन को तोड़ने वाले सभी कुकृत्यों को करना ये लोग अपना कर्तव्य मानने लग गये हैं। इनकी ज़बान पर है एक ही शब्द—"क्रान्ति! क्रान्ति!!" इस 'क्रान्ति' का अर्थ इनके कोष में केवल विनाश ही है, रचनात्मक कुछ नहीं।

आज सारे संसार में ऐसे समाजवाद के प्रति चिन्ताशील लोगों में बड़ी घृणा उत्पन्न हुई है और सदाचारी लोग इस आने वाली प्लेग के विरुद्ध युद्ध की योजनायें बनाने लगे हैं। मनुष्य की प्रवृत्ति संयम की ओर देरी से जाती है और पशुपन की ओर अतिशीघ्र। पहला है ऊँचा चढ़ने का पथ और दूसरी है नीचे गिरने की राह। नीचे की ओर जाने के लिये कोई पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता, लेकिन ऊपर चढ़ने के लिये उच्च सद्गुणों की दरकार है। कार्ल मार्क्स का समाजवाद आज स्वच्छन्दता का दरवाज़ा खोलता है और अधिकाररूप में मनुष्य को नैतिक नियम तोड़ने की आज्ञा देता है। पातिव्रत धर्म, जो संयम का सर्वश्रेष्ठ आदर्श है, उसकी मसखरी उड़ाकर यह Free love अर्थात स्त्री-पुरुष में खुले प्रेम की छुट्टी देता है और हमारे व्यक्तित्व का नाश कर हममें व्यक्तिगत आज़ादी, समता और भ्रातृभाव के दैवी गुणों का ह्रास करता है। रूस में आज जो कुछ हो रहा है, उसकी सच्ची गाथा, उसके विनाशकारी परिणाम और वहाँ के अत्याचारों की कहानी जिस दिन यथार्थ रूप में संसार के सामने आयेगी, उस दिन यह पृथ्वी काँप उठेगी और समाजवाद के विरुद्ध एक भयङ्कर तूफ़ान खड़ा होगा।

इसलिये हम अपने देशवासियों को अभी से चेतावनी देते हैं और उन्हें सावधान कर कहते हैं कि वे भेड़ें बनकर रूस की नक़ल न करें और न योरुप की बुरी बातों को विवेकहीनतावश अच्छी ही समझ लें। कोई वस्तु नवीन होने से श्रेष्ठ नहीं

हो सकती और न पुरानी होने से ही निकम्मी ठहराई जा सकती है। वस्तु का व्यवहारिक रूप ही उसकी उपयोगिता और दुरुपयोगिता का निश्चय करता है। हमें न तो रूस से द्वेष है और न जर्मनी से प्रेम; हमें न तो इङ्गलैण्ड का पक्ष है और न अमरीका की मुहब्बत; हम न तो पूर्व के गुलाम हैं और न पश्चिम के विद्वेषी—हम तो विवेकिनी बुद्धि के साथ माप-तोल कर चीजों की परख करते हैं और पक्षपातरहित होकर उसकी विवेचना करते हैं। हमारा है सत्यज्ञान का मार्ग। यदि कोई अच्छी बात हमें रूस सिखलाता है तो हम उसे धन्यवादपूर्वक शिरोधार्य करेंगे; यदि जर्मनी और इङ्गलैण्ड से हमें कोई उपयोगी शिक्षा मिलती है तो हम उसे ठुकरायेंगे नहीं। हम हैं हंस; हमारा काम है क्षीर और नीर को जुदा जुदा करना; पानी को छोड़ देना और दूध को पी लेना। यही प्रार्थना हम अपने देशवासियों से करते हैं और उन्हें कहते हैं कि वे अपने प्राचीन बजुर्गों की संस्कृति का आदर करें, विद्वानों का सत्कार करें; बड़े-बूढ़ों को नमस्कार करें; सबकी बात श्रद्धा से सुनें, लेकिन मानें वही जिसे उनका हृदय और मस्तिष्क स्वीकार करे। पशुओं की तरह हौहल्ला, मूर्खों जैसा अशिष्ट व्यवहार और जङ्गलियों जैसी हरकतें न अपनावें, बल्कि जिज्ञासु बनकर अपना हृदय-द्वार प्रकाश के लिये खोल दें। लैनिन और कार्ल मार्क्स ने प्रकाश का ठेका नहीं ले लिया और उस पर अपने अन्तिम शब्द नहीं कह दिये। ज्ञान अनन्त है और हमें उसका अन्वेषण बराबर जारी रखना है। कार्ल मार्क्स और

लैनिन को अन्तिम पैग़म्बर न समझकर हमें उनकी अच्छी बातों को अपनी ज्ञानमाला में पिरोकर अपना मुँह सदा अनन्त की ओर रखना चाहिये। किसी एक खूँटे को पकड़ लेने से मनुष्य अपना विकास रोक लेता है और उसके मस्तिष्क में राग-द्वेष के कीड़े पैदा हो जाते हैं।

अतएव आइये, हम बुद्धिवाद के प्रकाश में रोटी के सवाल पर विचार करें। हमसे पहले बहुत से अन्वेषकों ने मानव-समाज की विषमता पर गम्भीर दृष्टि डाली है; रोटी के प्रश्न पर उन मनस्वियों ने भी बड़ा ग़ौर किया है। हज़ारों वर्षों के अनुभव के बाद उन्होंने क्या निचोड़ निकाला ? वे इस परिणाम पर पहुँचे कि मनुष्य के अन्दर छिपा हुआ जो स्वार्थ है, जो लाखों वर्षों का व्यक्तिगत भूत—"मैं"—यह अहं की भावना है, इसमें जो अहम्मन्यता की वजह से संसार के भोगों को अकेले भोगने की लालसा है, यही मनुष्य-समाज की सब व्याधियों का मूल कारण है। हम जब तक आवश्यकताओं की कमी के सिद्धान्त को विकासस्तम्भ नहीं बनायेंगे, तब तक मनुष्य का यह स्वार्थ—उसका यह पशुपन—कदापि दूर नहीं हो सकता। उन्होंने अपना सारा ज़ोर व्यक्ति के सुधारने में लगाया और Personal Ethics अर्थात् व्यक्तिगत सदाचार, कर्तव्य और धर्म की बुनियाद डाली। जितने भी आचार्य हुए, जितने धर्मप्रचारक आये और जितने पैग़म्बर-मसीहा खड़े हुये, सबने अपनी सारी शक्ति व्यक्तिगत नैतिकता, व्यक्ति के विकास और उसी की मोक्ष-प्राप्ति

में लगा दी, परन्तु वे भूल गये कि व्यक्ति का गहरा सम्बन्ध राष्ट्र के साथ है। जहाँ व्यक्ति की नैतिकता, उसका सदाचार, उसकी धार्मिकता आवश्यक है, वहाँ State अर्थात् राष्ट्र के धार्मिक विकास की भी बड़ी सख़्त ज़रूरत है। दोनों का आपस में गहरा सम्बन्ध है। इसी भूल की वजह से उनका व्यक्ति को सुधारने का पुरुषार्थ भी सफल नहीं हो सका और संसार आज समाजवाद, कम्यूनिज़्म और बोलशिविज़्म के बवण्डरों का सामना कर रहा है। इसके विपरीत प्राचीनकाल के आर्यों और यूनान के दार्शनिक विद्वानों ने जहाँ व्यक्तिगत नैतिकता के सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया, जहाँ उन्होंने व्यक्ति के विकास के धार्मिक नियम निश्चित किये, वहाँ उन्होंने समष्टि अथवा राष्ट्र की नैतिकता पर भी ज़ोर डाला। इसी वजह से यूनान की चतुर्मुखी सांस्कृतिक उन्नति हुई और इसी कारण आर्यों ने अपना चक्रवर्ती राज्य स्थापित कर मनुष्य के सर्वाङ्ग विकास का पथ ढूंढ निकाला। उनकी खोज का क्या परिणाम निकला और उन्होंने अपने स्वाभाविक बुद्धिवाद से रोटी के सवाल को किस रूप में हल किया, इस तथ्य को हमें पहले जान लेना चाहिये। इसके बाद हम आधुनिक आर्थिक समस्याओं को हल करने का प्रयत्न करेंगे। यूनानियों ने राष्ट्र-धर्म का जो ख़ज़ाना योरुप को दिया, उसमें सत्यज्ञान की खोज के लिये तो सामग्री भरपूर है, किन्तु यहूदी संस्कृति का कूड़ा-कर्कट योरुपीय जातियों को पीछे की ओर खेंच रहा है। यहूदी सभ्यता द्वारा फैले हुए सामाजिक विषमता के

विचार भयङ्कर प्रतिक्रिया उत्पन्न कर वहाँ पर भीषण तूफ़ान खड़े कर रहे हैं। उन तूफ़ानों की शान्ति के लिये हमें अपने यहाँ के अन्वेषकों की खोज-सम्पत्ति पर दृष्टि डालना उचित है और तब रोटी के सवाल पर विश्व की शान्ति का दारोमदार किस प्रकार हो सकता है, उसपर पक्षपातरहित दृष्टि से मीमांसा की जायेगी।

अब हम सबसे पहले आर्यों की प्राचीन संस्कृति के सर्वोत्कृष्ट सिद्धान्त की व्याख्या करते हैं। वही पूर्व और पश्चिम की संस्कृतियों की अलग अलग विचारधाराओं का स्पष्टीकरण करता है।

तीसरा अध्याय

प्राच्य संस्कृति का मूल स्तम्भ

मनुष्य क्यों भागता है धन के पीछे ? क्या वह सोना खाता है या चान्दी के ग्रास डकारता है ? फिर इनका संग्रह वह क्यों करता है ? इसीलिये न कि इन धातुओं की बदौलत उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है । यदि आप किसी रेतीले मैदानमें चले जा रहे हों और प्यास के मारे आपके प्राण निकलने लगें तो उस समय आप क्या करेंगे ? फ़र्ज करो कि आपकी जेब में सोने की दो ईंटें हैं; क्या उनके चाटने से आपकी प्यास मिट सकेगी ? यदि वे दोनों सोने की ईंटें आपके लिये एक गिलास पानी नहीं ला सकतीं तो क्या आप उन्हें दूसरे कंकड़-पत्थरों की तरह निरर्थक समझकर दूर नहीं फेंक देंगे ? इस उदाहरण से यह स्पष्ट है कि मनुष्य सोना-चांदी को जमा इसीलिये करता है कि वे उसके जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के साधन हैं । मनुष्य खाता है रोटी, मांस और अण्डा; पीता है दूध और अन्य पेय पदार्थ, जिनके लिये उसे पैसा देना पड़ता है, इसीलिये वह पैसे को जमा करता है । इससे स्पष्ट है कि मनुष्यों की आवश्यकतायें ही धन के जमा करने का ज्वर पैदा करती हैं । यदि हम किसी प्रकार कोई ऐसी व्यवस्था बना सकें, जो आवश्यकताओं को संयमित करे और समाज का पूर्ण विकास भी होसके तो हमारा रोटी का प्रश्न सहज में ही हल हो सकता है ।

अब दो मार्ग होगये—एक आवश्यकताओं को बढ़ाने वाला और दूसरा उनको अत्यन्त संयमित करने वाला। यह बात भली प्रकार स्पष्ट है कि आवश्यकताओं की वृद्धि होने से ही रोटी की मारामारी हो सकती है। यह सच है कि ज़रूरतों के बढ़ने से मनुष्य क्रियाशील बनता है, समाज में चुस्ती आती है, लोग दौड़-धूप करने लगते हैं, कच्चे माल की तलाश में देशदेशान्तरों को भागते हैं, कल-कारख़ाने चलाते हैं और एक प्रकार की ज़बर्दस्त मशग़ूली समाज में दिखलायी देती है। इतना ही नहीं, बुद्धिमान लोग नये नये आविष्कार करते हैं, अपना मस्तिष्क लड़ाकर प्रकृति को जीतने का प्रयत्न करते हैं और इस प्रकार समाज में उत्तरोत्तर सभ्यता की वृद्धि होती है। पूर्वपक्ष यह पूछता है—"क्या आवश्यकताओं की कमी के सिद्धान्त का प्रचार करने से समाज सुस्त और निकम्मा न हो जायेगा? आप क्या समाज को आलसी, प्रमादी और अफ़ीमी बनाना चाहते हैं? हमने मान लिया कि आवश्यकताओं की वृद्धि से पारस्परिक मारामारी होती है, जीवन-संग्राम बढ़ता है, जीवन-होड़ के दरवाज़े खुलते हैं तो इससे हानि ही क्या है? उलटा ये तो अच्छी बातें हैं, क्योंकि इनके द्वारा सक्षम आदमी जीते रहेंगे और निकम्मे ख़त्म हो जायेंगे। प्रकृति का यही नियम है और हम उसी के सिद्धान्तानुसार समाज को चलाना चाहते हैं।"

इसके उत्तर में प्राच्य संस्कृति का प्रतिनिधि यह निवेदन करता है कि सक्षमता को सर्वाङ्गपूर्ण समाज में प्रगट करने का

यही एक मार्ग नहीं है। हम आपको इससे श्रेष्ठतर मार्ग यदि इस उद्देश्य की सिद्धि का बतलावें तो आप हमारी बात स्वीकार करेंगे न? आवश्यकताओं की वृद्धि मनुष्य में जगाती है उन लाखों वर्षों की आदतों को, उन विषय-भोग की कम्पनाओं को, जिनको संयमित कर इस दो टाँगवाले पशु ने मनुष्यत्व का दरजा पाया है। यदि आप उसकी उन कम्पनाओं को वैज्ञानिक रूप दे कर उनकी वृद्धि कर देंगे तो यह पशु मानवता की ओर न जाकर बड़ा भयङ्कर प्राणी बन जायेगा। उसके अन्दर जो छिपी हुई बुरी आदतें हैं, वे परिष्कृत होकर और भी अधिक डरावनी हो जायेंगी। हम भी चाहते हैं कि केवल सबल बीज और वीर्यवान स्त्री-पुरुष ही फूलें-फलें; निकम्मी जोंकों का सर्वनाश हो—हम ऐसे आलसी प्रमादी नर-नारियों को मुट्ठीभर अन्न भी देना नहीं चाहते। हमारा निवेदन तो केवल इतना ही है कि धन में जो शरा-रत करने की शक्ति है, उसका जो विषैला डङ्क है, उसके जो जह-रीले दाँत हैं, उन्हें तोड़ डालना चाहिए और उसका इस ढङ्ग से सदुपयोग किया जाये कि वह केवल हमारी अत्यावश्यक ज़रूरतों को पूरा करने का साधन बन जाये। उसमें ज़रूरतों को बढ़ाने का आकर्षण न हो, बल्कि वह हममें आवश्यकताओं को कम करने की स्फूर्ति प्रदान करे। धन लोक में राजमद पैदा करने का शस्त्र न बने, बल्कि जरूरतों को कम करने और विनय लाने का प्रवर्त्तक होजाये। यदि हम ऐसा कर सकें और मानव-समाज में शान्ति लाने का मार्ग आपको बतला दें तो फिर आप उसके स्वी-

कार करने में हिचकिचाहट क्यों करेंगे ? आपको प्राचीनकाल के आर्यों से तो कोई चिढ़ नहीं है न और न पक्षपात है रूस और अमरीका का; यदि आप सचमुच सत्य के अन्वेषक हैं तो आपको पक्षपातरहित होकर हमारी योजना पर ध्यान देना चाहिये। अच्छा सुनिये।

आप कहते हैं कि पुराने आर्यों ने व्यक्तियों के सुधार का प्रयत्न किया, लेकिन अधिकाररूप में (By sanction) सामाजिक विषमता दूर करने का प्रयत्न नहीं किया। आप कहते हैं कि हम ऐसे नियम बना देंगे जो पूँजी जमा ही न हो सके; भूखण्डों को इस ढङ्ग से बाँटेंगे कि उनकी पैदावार धनसंग्रह का कारण न बन सके, वह राष्ट्र की सम्पत्ति हो जाये; कल-कारख़ाने ऐसे बनायेंगे, जो प्राइवेट व्यक्तियों के न हों, बल्कि राष्ट्र के अधीन हों और उनकी सारी आमदनी राष्ट्र सम्भाल ले; हम व्यक्तियों पर कोई ज़िम्मेदारी ही न रक्खेंगे, गृहस्थ की सारी ज़िम्मेदारी राष्ट्र पर डाल देंगे और व्यक्ति—स्त्री-पुरुष—नपे-तुले घण्टे काम करेंगे, अपनी ज़रूरतों के मुताबिक भोग के पदार्थ पायेंगे और फ़ुरसत का सारा समय राष्ट्र द्वारा खोले हुए सिनेमा-थियेटर आदि विहारस्थलों में जाकर विचरेंगे। आप इस योजना को आदर्श बतलाकर हमारे सामने समाजवाद के गुण गाते हैं। आप यह समझते हैं कि ऐसे समाज में जितने भी लोग होंगे, वे सब एक ही तरह के मिट्टी के माधो, कठपुतलियाँ और हँकाये जाने वाले पशुओं की तरह शरीर रखते हुए आपकी बनाई हुई योजना

को सिर झुकाकर मानते जायेंगे और जिनके हाथ में आप शासन की बागडोर देंगे, वे देवतास्वरूप आदर्श पुरुष सत्य और न्याय के अनुसार सबका भाग बाँट देंगे और जो कोई भी उनकी योजना के विरुद्ध चूँचरा करेगा, उसे डण्डे के जोर से सीधा करेंगे। आप इस प्रकार अपने समाजवाद द्वारा अधिकार रूप से सामाजिक विषमता दूर करने के लिये खड़े हुए हैं।

भला सोचिये तो सही कि मनुष्य में जो मनोविकार हैं, स्वार्थ की भावनायें हैं, रागद्वेष के जो तूफ़ान हैं, वे भला इस प्रकार की योजनाओं से शान्त हो सकते हैं? यह आपकी योजना तभी चल सकती है, यदि अधिकांश नर-नारी मूर्ख बने रहें और चुने हुए गिनती के ही लोग उनपर हकूमत करें। तब वह राज हो जायेगा सामन्तों का और आप पीछे लौटकर फिर चले जायेंगे मध्यम काल में। जबतक मनुष्य में सोचने की शक्ति है, जबतक उसमें विचार करने का माद्दा है, जबतक विभिन्नता प्रकृति का नियम है, तबतक कभी भी डण्डे के ज़ोर से धन की इस प्रकार की व्यवस्था अमली तौर पर चलाई नहीं जा सकती। कारख़ानों में काम करनेवाले मजदूर असन्तुष्ट होंगे, उनमें अपने स्वभावानुसार दलबन्दी होगी, मनोविकारों के अनुकूल एक दूसरे के दोस्त-दुश्मन बनेंगे और विरोधियों को नीचा दिखलाने के लिये षड्यन्त्र रचे जायेंगे; उच्च अधिकारियों को ख़ुशामदी और चापलूस अपने अपने वश में कर मनमाने काम करा लेंगे, सुन्दर रमणियाँ शासनारूढ़ व्यक्तियों को अपने जाल में फँसा इच्छानुकूल काम

करायेंगी—मानवी स्वभाव में जो स्वाभाविक विषमता है, वह क्या इन बन्धनों में बान्धी जा सकती है ? कदापि नहीं। यदि मनुष्य देवता बन जायें और सत्य-न्याय को सहर्ष स्वीकार कर दूसरों के साथ अत्याचार करना छोड़ दें तो फिर ये सब बखेड़े ही क्यों हों। नहीं नहीं; आपकी समाजवाद की योजना एक विकृत मस्तिष्क की उपजमात्र है, जिसे मनोविज्ञान का बिलकुल पता न था, जिसने मस्तिष्क के बुख़ार में यह योजना घड़ डाली और समझ लिया कि वह पशुबल से जन्मजन्मान्तरों के संस्कारों को बदल सकता है। मूर्ख मनुष्य !

अब हम आपके सामने आवश्यकताओं की कमी का परिणाम, उस सिद्धान्त के नीरोग नतीजे और समाज में सक्षमता के पूर्ण विकास के विषय की विवेचना करते हैं।

देखिये ! हमने मानव-जीवन का आदर्श बनाया है ज्ञानमार्ग को। वह ज्ञानमार्ग तभी मिल सकता है, जब हम संसार के भोगों से उपराम होकर, आवश्यकताओं को सीमित कर, ज्यादा से ज्यादा अवकाश का समय निकाल सकें। जब आपको फ़ुरसत मिलेगी, आप रोटी के पचड़े से निश्चिन्त होंगे, नून-तेल-लकड़ी का भूत आपके सिर पर से उतरेगा, तभी तो आप स्वाध्याय कर सकते हैं, ज्ञान-चर्चा चला सकते हैं और पदार्थ-विज्ञान के अद्भुत चमत्कारों को समझने का प्रयत्न कर सकते हैं। मज़दूर को अवकाश मिले, रोटी की मारामारी में वह चौबीसों घण्टे न डूबा रहे, इस बात में समाजवादी तथा ज्ञानमार्गी मतैक्य रखते हैं।

समाजवादी कहता है कि मज़दूर को इतने कम घण्टे काम करना चाहिये कि जो वह अपना फ़ुरसत का समय मनोरञ्जन और ज्ञानोपार्जन में लगा सके। लेकिन वह भूल जाता है कि ज्ञानोपार्जन के साथ है सम्बन्ध संयमित मन का और घण्टों की कमी करना या न करना अधीन है शासकों के; उसकी योजना में मज़दूर दास ही रहेगा, वह स्वाधीन नहीं हो सकता; क्योंकि किसी समय भी शासक कह सकते हैं कि राष्ट्र की आवश्यकतानुसार इस समय अधिक घण्टे काम करना चाहिये। यदि मज़दूर कठपुतली नहीं और वह शासकों की राय से सहमत न होगा तो उसका अन्तरात्मा विद्रोह कर उठेगा और वही काम उसे नर्कसम जान पड़ेगा। इसी विद्रोह को दबाने के लिये लैनिन ने विचार-स्वातन्त्र्य का विरोध किया है और मज़दूर के व्यक्तित्व का नाश कर उसे समष्टि में ही सोचने का उपदेश दिया है। यह तभी होगा, यदि मनुष्य मनुष्य न रहकर लकड़ी अथवा धातु की कठपुतली बन जायगा। इसीलिये हम कहते हैं कि समाजवाद निरङ्कुशता की चरमसीमा है और स्वाधीनता का घोर शत्रु है। और हमारा मज़दूर ? वह अपनी आवश्यकताओं का ग़ुलाम नहीं। आप घण्टे कम करें चाहे न करें, उसकी कम आवश्यकतायें ही उसे स्वाधीन बना देती हैं और यदि आप राष्ट्र-हित के नाम पर उस पर अन्याय करना भी चाहेंगे तो आवश्यकताओं को सीमित रखने वाला हमारा संयमी मज़दूर आपके ज़रूरतों के ग़ुलाम मज़दूर की अपेक्षा सफलतापूर्वक अत्याचार का विरोध कर सकेगा।

हाँ, हम कर रहे थे अवकाश की बात। आदर्श ही मनुष्य के उत्थान और पतन का कारण बनता है। जब समाज का जीवनादर्श है ज्ञानमार्ग और उसकी संस्कृति का मूल स्तम्भ है आवश्यकताओं की कमी तो फिर ऊँचे से ऊँचे अधिकारी से लेकर छोटे से छोटे नौकर तक सभी धन संग्रह करने से बचेंगे। जब सबको यह मालूम होगा कि जीवनादर्श तो ज्ञान-प्राप्ति है और ज्ञान-प्राप्ति हो सकती है सात्विक जीवन से—इन्द्रिय-संयम से—और जरूरतों की कमी ही हमें जगत् की चिंताओं से मुक्त कर सकती है तो फिर स्वाभाविक ही समाज के सदस्यों की प्रवृत्ति चित्तवृत्तियोंके निरोध की ओर जायेगी। जब लोग देखेंगे कि संयमी पुरुष ही सबसे अधिक ज्ञानी बन सकते हैं और वे ही समाज में सर्वोत्कृष्ट दरजा पाते हैं तो फिर आन्तरिक विचारधारा आप ही आप ज्ञानमार्ग की ओर बहने लगेगी और धन का मोह स्वयं ही कम होता जायेगा; तब उनको पता लगेगा कि धन केवल शरीर-रक्षा के हेतु साधन-मात्र है, आदर्श नहीं। यदि हम उसका संयम से उपयोग करेंगे तो समाज के अधिक से अधिक सदस्य ज्ञानोपार्जन कर सकेंगे। तब मनुष्यों की प्रवृत्ति धन को जमा करने की बजाय ऐसे सामाजिक सत्कार्यों में खर्च करने की ओर लगेगी, जो ज्ञान-मार्ग के परम सहायक होंगे। तब बिना किसी डण्डे के धनी अपनी इच्छा से स्वयं संयमी बनकर धनका समाज की भलाई के लिये सदुपयोग करने में अपना अहोभाग्य मानेंगे। मनुष्य के अन्दर छिपे हुए मनोविकार संयमी साधनों से ही दबाये जा सकते हैं, स्वच्छन्दता

के प्रचार से नहीं। आप अपने समाजवाद में खुली छुट्टी देते हैं मनोविकारों को और आपका मनोरंजन तथा ज्ञानोपार्जन विषय-भोग की अग्नि बढ़ाने के वास्ते है, उसे मिटाने के लिये नहीं और इस पर तुर्रा यह कि आप आशा रखते हैं कि आपके करोड़ों मज़दूर और किसान भेड़ें बनकर आपके चुने हुए शासकों के डण्डे का शासन सहर्ष स्वीकार कर लेंगे और आप दुनियाँ को बड़ी आसानी से स्वर्ग बना सकेंगे।

ज़रा सोचिये तो सही कि दुनियाँ में असली झगड़ा है क्या ? मानव-समाज लड़ रहा है पशुपन से। उसकी सारी योजनायें मनुष्य को मानवता की ओर ले जाने में हैं ताकि हमारे सामने यह जो प्राकृतिक जगत् है, इसके साधनों को सत्य और न्यायपूर्वक बाँटकर प्रत्येक स्त्री-पुरुष अपनी दैवी शक्तियों का विकास कर सके और हम उन प्राकृतिक और आध्यात्मिक रहस्यों का उद्‌घाटन कर सकें जो लाखों वर्षों से हमारी बुद्धि को आश्चर्य-चकित कर रहे हैं। हम संसार में बढ़िया बढ़िया भोजन खाने के लिये ही नहीं आये, रूपवती स्त्रियों के साथ सम्भोग करना मानव-जीवन का लक्ष्य नहीं; बड़े बड़े कल-कारख़ाने खोलकर पक्का माल तैयार करना और उसके बेचने के लिये मण्डियों की तलाश में घूमना हमारी ज़िन्दगी का ध्येय नहीं है। हम जानना चाहते हैं कि रात को आकाश में चमकने वाले ये नक्षत्र क्या हैं ? क्या पृथ्वी की तरह वहाँ पर भी लोग बसते हैं ? वहाँ की दुनियाँ कैसी है ? आदमी जब मर जाता है, तब बस क्या वह ख़त्म हो

जाता है ? इसमें क्रियाशील चैतन्यता का पुञ्ज जो आत्मा है, वह मरने के बाद कहाँ चला जाता है ? समुद्र की तह में कैसा रहस्यमय संसार है ? इस प्रकार के विस्मयजनक प्रश्न करोड़ों वर्षों से अपना हल चाहते हैं। हमारा काम है इस सुन्दर ज्ञानमार्ग की ओर जाना और संसार के सब पदार्थों का उतने दरजे तक भोग करना, जितने में वह भोग हमारे ज्ञान-अन्वेषण में सहायक हो सके। जो स्त्री-पुरुष, जो पशुप्राणी, जो जड़-चेतन इस मार्ग में सहायक बनता है, वह है हक़दार प्राकृतिक भोगों का और जो इस मार्ग में कुछ भी सहायता नहीं देते, वे हैं जोंकें, निकम्मे पौदे, जिनका नाश कर उन्हें खाद बना लेना ही सामाजिक धर्म का मार्ग है। समाजवादी सक्षमता लाते हैं जीवन की आवश्यकताओं को बढ़ाकर, व्यापार की मारामारी पैदाकर, किन्तु हम सक्षमता लाते हैं संयम से, विश्लेषण (Segregation) से और उत्तम नस्ल की सन्तान उत्पन्न करने से। हमारी योजना के अनुसार निकम्मे आपही आप मरते चले जायेंगे, क्योंकि हम उनकी उत्पत्ति का रास्ता बन्द कर देंगे और उन्हीं को ख़ुराक देंगे, जो विकास-पथ को प्रशस्त करें और ज्ञानमार्ग को आगे बढ़ावें। हमारी योजना में वे सब गुण, जिन्हें समाजवाद लाना चाहता है, तो आ ही जायेंगे, लेकिन इसके साथ साथ जहाँ विश्वशान्ति का स्वर्गद्वार खुल जायेगा, वहाँ मानव-समाज का मुँह अनन्त की ओर भी हो सकेगा। जिस चीज़ की लाखों वर्षों से हमें चाह है, वे अमूल्य रत्न हमारी योजना से ही प्राप्त हो सकते हैं।

अच्छा और क्या लाभ आवश्यकताओं की कमी के सिद्धान्त से हो सकते हैं ? कौन सी सामाजिक व्यवस्था प्राचीन काल के आर्यों ने बनाई थी, जिस पर चलकर उन्होंने इतनी शीघ्रता से ज्ञान का मार्ग पहिचान लिया ? उसके विषय में भी कुछ लिख देना अनुचित न होगा। अगले अध्याय में हम आर्यों की उस आश्रम-व्यवस्था पर प्रकाश डालते हैं। और पाठकों को बतलाते हैं कि किस प्रकार हमारे बज़ुर्गों की यह अद्भुत आश्रम-योजना संसार में उठ रहे इन 'इज़्मों' के बवण्डर को शान्त कर विश्व में शान्ति का स्वराज्य स्थापित कर सकती है।

चौथा अध्याय

प्राचीन आर्यों का समाजवाद

पाठकों ने देख लिया होगा कि हमारी विचारधारा में प्रमाणवाद के लिये कोई स्थान नहीं और न हम पैग़म्बरों के ही क़ायल हैं। हमारा है बुद्धिवाद का प्रशस्तमार्ग, जिसमें सत् असत् विवेकिनी बुद्धि के साथ वस्तुओं को ग्रहण अथवा त्याग किया जाता है। हम प्रगतिशीलता के नाम पर नवीन बिगड़ी हुई हानिकारक प्रथाओं के चलाने के पक्षपाती नहीं हैं और न पुरानी दक़ियानूसी उपयोगशून्य रूढ़ियों को स्वीकार ही करते हैं। पूर्व को हम नमस्कार करते हैं उसकी पिछली सेवाओं के लिये और पश्चिम का हम आदर करते हैं उसकी ताज़गी और उसके वैज्ञानिक मस्तिष्क के लिये। हमारा है मध्यम पथ, जिसमें भली वस्तुओं का सम्मिश्रण, उनका समयानुकूल चुनाव और उन्हें परिस्थितियों के अनुसार बनाने की शिक्षा दी जाती है। हम बच कर चलते हैं झाड़-झंकाड़ों और कंकड़-पत्थरों से तथा उन बुरे स्त्री-पुरुषों से, जो हमें धोखा देकर, चमकीली चीजें दिखलाकर और सड़ी-गली वस्तुओं को नवीन आवरणों से ढक कर हमें पशुपन की ओर धकेलना चाहते हैं। आजकल भारतवर्ष के इस परिवर्तन-युग में इस प्रकार के बनावटी आन्दोलन, चकाचौंध लाने वाली बातें और चलतेपुर्ज़े लोग अपना उल्लू सीधा करने के लिये नये नये स्वाँग रचकर मैदान में उतर आये हैं।

अच्छा तो यहाँ हो क्या रहा है? जब से इस देश में स्वाधीनता, स्वतन्त्रता, समता, भ्रातृभाव, क्रान्ति और युग-परिवर्तन के विचार फैलने प्रारम्भ हुए हैं, जब से प्रगतिशील विकास की नीरोग विचारधारा यहाँ पर बहने लगी है और जब से जनसाधारण अपना हानि-लाभ समझकर उन्नति की ओर मुँह करने लगे हैं, तब से दुष्ट और स्वार्थी लोग अपने विकृत मस्तिष्क से स्वच्छन्दता पर नवीनता का मुलम्मा चढ़ाकर, उस पर प्रगतिशीलता का खोल पहिनाकर ठगी करने के लिये निकल खड़े हुए हैं। क्रान्ति के अर्थ वे लेते हैं—सब पुराने नैतिकता के आदर्शों को तिलाञ्जलि दे देना और स्वच्छन्दता से विचरना। वे चाहते हैं कि किसी प्रकार के सामाजिक शिष्टाचार अथवा अनुशासन सम्बन्धी नियम न रह जायें ताकि वे सभी व्यवस्थाओं को तोड़कर मनमानी कर सकें। यदि पाँच दस चोर मिलकर वैज्ञानिक ढंग से रेलगाड़ी को रोककर अथवा मोटर पर बैठकर डाका डालते हैं तो ये अज्ञानी लोग उन्हें देशभक्त बतलाकर उनकी प्रशंसा के पुल बाँधने लगते हैं और कहते हैं "इन्हें चोरी करने का हक़ है, क्योंकि ये भूखे हैं; ये प्रगतिशील लोग हैं, जो पूंजीवाद का नाशकर समता का राज्य लाना चाहते हैं।" यदि कोई दुष्ट आत्मा किसी निरपराध की हत्या कर फांसी पर लटकाया जाता है तो ये बिगड़े दिमाग़ वाले उसे शहीद कहकर उसकी बहादुरी के गीत गाते फिरते हैं और इस प्रकार समाज में हिंसावृत्ति फैलाते हैं। इन्हें भाता है हिंसक पशुओं का जीवन और उसका नाम धरते हैं क्रान्ति, इन्क-

लाब और प्रगतिशील आन्दोलन !! इस प्रकार इस सुन्दर स्वाधीनता के वातावरण में ये खुदग़र्ज़ नवयुवक और युवतियाँ पश्चिम के डाकुओं की बुरी आदतों को नये नये नाम देकर भारतवर्ष की मूढ़ जनता को बहकाने लगे हैं। योरुप के धार्मिक और चिन्ताशील लोग अपने समाज के जिस व्याधियुक्त अंग को काट कर फेंक रहे हैं, हमारे ये जाहिल क्रान्तिकारी उसे उठाकर मस्तक पर चढ़ाते हैं। इसीलिये आजकल हमारे देश में चारों ओर आपाधापी मचने लगी है।

आज बड़ी सावधानी से, बड़े संयम के साथ, हमें अपने कर्तव्य का पालन करना है। अपने इस परिवर्तन-युग में हमें विवेक के साथ मण्डी में पड़ी हुई चीज़ों को ख़रीदना है। आज ईमान्दारी का लोप होगया है; धोखाधड़ी का राज्य है, उपयोगी नैतिक शब्दों के अर्थ बदल दिये गये हैं और आज बेईमानी और धूर्तता करनेवाले लोग उन्हें अपने दुर्गुण नहीं मानते, बल्कि उन्हें अपना व्यवहार-कौशल बतलाकर उस पर शेख़ी बघारते हैं। ऐसे भयंकर काल में, जब स्त्री-पुरुषों की पशुवृत्तियाँ अधिकाररूप से अधर्म का शासन चलाने लगी हों, संयम और अनुशासन का उपदेश देने के लिये बड़े ज़बर्दस्त कलेजे की ज़रूरत है। आज इस धर्म-संकट के समय जब चारों ओर चोरी, व्यभिचार, नास्तिकता और उद्दण्डता की आन्धियाँ उठने लगी हों, किसी विरले ही माई के लाल की हिम्मत सात्विक सिद्धान्तों की रक्षाहित संग्राम करने की हो सकती है। आज, आर्य-संस्कृति के सभी प्रशंसकों और उसका

उत्थान चाहने वालों को लंगर-लंगोटे कसकर मैदान में उतरना चाहिये ताकि इस झूठी क्रान्ति की बाढ़ को रोका जा सके और पाप के इन कीटाणुओं की हत्या हो सके। आज हमें सारी शक्ति लगाकर अपने इस प्यारे देश को विनाश के महासागर में डूबने से बचाना चाहिये। ग़ैरज़िम्मेदार लोग उपदेष्टा और लीडर बनकर हमारे स्कूल-कालेजों के लड़कों को बहकाने लगे हैं, मज़दूर-किसानों को हिंसावृत्ति सिखाने लगे हैं और देश के सभी सुन्दर आदर्शों को मिटाकर रूस का बवण्डर खड़ा करना चाहते हैं। ऐसे आपत्काल के समय में सत्य पर पूरा विश्वास कर, ईश्वर के सहारे हमें वीरों की तरह अपना कर्तव्य पालन करना चाहिये। यह हमारी परीक्षा का समय है। आगे भी बहुत से आन्धी-तूफ़ान हम पर गुज़र चुके हैं, जिनका मुक़ाबला हमारे बज़ुर्गों ने किया था। आज हमारे लिये फिर वैसा ही धर्मसंकट खड़ा हुआ है। प्रभु की कृपा से हम इस पर भी विजयी होंगे, क्योंकि सत्य और न्याय हमारी ओर हैं और रक्षा किया हुआ धर्म सदा रक्षा करता है। प्राचीनकाल के आर्यों के पास आश्रमों की अद्भुत योजना थी, जिसके सहारे वे सभी आँधियों का मुक़ाबला करते रहे। वह योजना क्या थी? सुनिये। आर्यों ने जीवन को चार भागों में बांट दिया—ब्रह्मचर्य्याश्रम, गृहस्थाश्रम, बानप्रस्थाश्रम और संन्यासाश्रम। उन्होंने कहा कि ज्ञानमार्गी को सबसे पहले पथ जानने की ज़रूरत है, इसलिये जीवन के पहले भाग में वह विद्यार्थी बनकर, उस समय के सभी विद्वानों के अनुभवों का लाभ

ले, अपनी रुचि के अनुसार दैवी शक्तियों के विकास के लिये उपयुक्त विषय चुने और उन्हीं के अन्वेषण में अपने आपको लगावे। सौ वर्षों के जीवन को वे स्वाभाविक मानते थे और प्रत्येक स्त्री-पुरुष को इतने वर्षों तक जीवन-यात्रा करनी ही चाहिये, ऐसी उनकी अनुभूति थी। उस जीवनकाल के चार भाग कर विद्यार्थी-अवस्था को उन्होंने ब्रह्मचर्य्याश्रम नाम दिया। यह जरूरी नहीं कि पचीस वर्षों के बाद विद्यार्थी अवश्य ही गृहस्थ करे; यदि उसकी रुचि अधिक विद्योपार्जन की हो तो वह अठतालीस वर्षों तक आदित्य ब्रह्मचारी रहकर अपना अन्वेषण जारी रख सकता है और वही उसके जीवन का पहला भाग माना जायेगा अर्थात् तब वह एक सौ बानवे वर्षों तक जीवन-यात्रा करेगा। वे यह मानते थे कि वीर्य शरीर का बादशाह है; जितना इसका संयम से उपयोग किया जायेगा, उतना ही अधिक ज्ञान-मार्ग प्रशस्त होगा, जीवन-यात्रा दीर्घ और सुखद होगी और उतनी ही अधिक ज्ञान-प्राप्ति के लिये बुद्धि प्रखर और प्रतिभा चमकेगी। वे आवश्यकताओं की कमी को अपनी संस्कृति का मूल स्तम्भ मानकर उसी के अनुसार सारी सामाजिक व्यवस्था किया करते थे अर्थात् शरीर के लिये उन्हीं चुनी हुई थोड़ी चीजों का उपयोग किया जाये, जो बल-वीर्य बढ़ाने और मस्तिष्क को नीरोग रखने में सहायक हों। अपने आयुर्वेद के विभाग में वे उन जड़ी-बूटियों को तलाश करते थे, जिनका थोड़ी मात्रा में सेवन करने से शरीर को लाभ तो उतना ही हो, किन्तु समय की

अधिक से अधिक बचत हो सके। वे भी इसी वैज्ञानिक सिद्धान्त को मानते थे—धन, शक्ति और समय थोड़े से थोड़ा ख़र्च कर अधिकाधिक लाभ उठाना। विषय-भोगों से उपराम होकर वे ज्ञान की ओर अपनी शक्तियों को केन्द्रीभूत करते थे। विद्यार्थी-अवस्था में उनका सारा ख़र्च सद्गृहस्थ उठाते थे और उस समय के विद्वान् उन्हें मुफ़्त शिक्षा देना अपना धर्म समझते थे।

यहाँ पर यह प्रश्न हो सकता है कि आज इस व्यापारिक युग में ऐसी आश्रम-व्यवस्था नितान्त असम्भव है। किन्तु यदि इस समस्या पर पक्षपातरहित होकर विचार किया जाये तो पता लगेगा कि असली बाधा आवश्यकताओं की अधिकता की है। आर्यों की इस संस्कृति के मूल स्तम्भ को समाज का आधार बनाये बिना आश्रमों की व्यवस्था नहीं चल सकती। जब तक हम पश्चिम को यह नहीं सिखला देंगे कि ज़रूरतों की अधिकता का जीवन-संग्राम मानवता का घोर शत्रु है और वह सभ्यता की बजाय असभ्यता बढ़ाने वाला है, तब तक कभी भी आश्रमों का सौन्दर्य उन्हें दिखाई नहीं दे सकता। हमें बदलना है पहले दृष्टि-कोण, पश्चिम की सांस्कृतिक विचारधारा, जिसके सहारे वहाँ का सारा सामाजिक जीवन प्रकृति की चमचमाहट से ओतप्रोत है। यह हो सकता है कि आज हम परिस्थितियों के बदल जाने के कारण विद्यार्थियों का सारा ख़र्च राष्ट्र के ज़िम्मे कर दें ताकि प्रबन्ध में सुगमता हो। तफ़सीलें परिस्थितियों के अनुसार बदली जा सकती हैं, उनमें छोटे मोटे परिवर्तन स्वाभाविक हैं, लेकिन

मुख्य आधारभूत बात यह है कि समाज का प्रत्येक बच्चा अपनी स्वाभाविक शक्तियों के विकासहेतु साधन प्राप्त करे और उसका विद्यार्थी-जीवन ज्ञानमार्ग को प्रशस्त करने वाला हो। लक्ष्य स्पष्ट होना चाहिये, तब नियम और उपनियम, साधन-उपसाधन समयानुकूल बदले जा सकते हैं। आज प्रत्येक विद्यार्थी पैसा पैदा करने की धुन में रहता है। वह ऐसी विद्या सीखने का इच्छुक है, जो उसके लिये अधिक से अधिक अर्थकरी हो, क्योंकि समय की आवश्यकतायें ज्यादा से ज्यादा धन मांगती हैं। वर्तमान युग का आदर्श ज्ञान-प्राप्ति नहीं, धन-प्राप्ति और विषयभोग है; इसी कारण रोटी का सवाल मुँह बाये खड़ा है और वह पश्चिम के समाजवाद से कभी सन्तुष्ट नहीं हो सकता।

ब्रह्मचर्य्याश्रम में सद्गृहस्थ भोजन देते थे और गुरु देते थे ज्ञान; विद्यार्थी को किसी प्रकार की चिन्ता नहीं थी। वह गुरुजनों की सेवा कर सामाजिक शिष्टाचार सीखता था, अपनी रुचि के अनुसार विद्या पढ़ता था, रोटी कमाने के लिये कोई शिल्पकला हस्तगत करता था और सदा अपने शरीर को नीरोग रख सब प्रकार के जीवन-संग्राम पर विजय प्राप्त करने के लिये उद्यत रहता था। विद्या-समाप्ति के बाद आता था गृहस्थ-जीवन। उस समय मां-बाप विवाह नहीं करते थे बल्कि स्वयं नवयुवक और युवतियाँ एक दूसरे की परीक्षा कर पारस्परिक सम्बन्ध करती थीं और माता-पिता तथा गुरुजनों का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिये वे अन्तिम सलाह उनकी ले लेते थे। सादा जीवन

व्यतीत करने वाले वे सद्गृहस्थ जीवन की मारामारी में न पड़ कर ज्ञानान्वेषण में व्यस्त रहते और गृहस्थ भोगते हुए भी अपने आदर्श को न भूलते। गृहस्थ में जिन सिद्धान्तों को अमली रूप में परखने का मौक़ा मिलता, उनकी वे भली प्रकार जाँच करते। सन्तानोत्पत्ति में मुख्य ध्यान सबल बीज का रखते और नपुंसक सन्तान पैदा करना पाप समझते थे। संख्या नहीं बल्कि उत्कृष्टता उनका लक्ष्य था, क्योंकि वे जानते थे कि अनन्त की ओर जाने के लिये पूर्ण विकसित तनधारी नर-नारी दरकार हैं। धन उनके लिये कोई आकर्षण नहीं रखता था, बल्कि ज्ञान ही उनकी सबसे प्यारी वस्तु थी। विद्यार्थी-अवस्था का संयमित जीवन और सादी ज़िन्दगी पर निर्वाह करने वाला समाज उनके लिये परम कल्याणकारी था। इसीलिये दोनों एक दूसरे पर अवलम्बित होकर तीसरे और चौथे आश्रम को सफल बनाते थे। आजकल हम विद्यार्थियों को गुरुकुलों में रखकर ब्रह्मचर्य का उपदेश देते हैं, धन-संग्रह की बुराइयाँ बतलाते हैं, सादा जीवन के स्वर्गीय दृश्य दिखलाते हैं और मोक्ष-प्राप्ति के रहस्य समझाते हैं और बाद में वही विद्यार्थी गुरुकुलों से निकलकर आधुनिक व्यापार-युग से सने हुए बड़े नगरों में जाकर बसते हैं तो हमारा उनसे प्राचीन आदर्शों के अनुसार जीवन व्यतीत करने के स्वप्न देखना केवल मूर्खता नहीं तो और क्या है? अपनी प्राचीन संस्कृति के आधार पर सामाजिक सङ्गठन किये बिना गुरुकुलीय शिक्षाप्रणाली सफलीभूत नहीं हो सकती, वह उलटा हानि करेगी; क्योंकि जब

गुरुकुलों से पढ़े हुए लड़के उस चकाचौंध में पड़ेंगे तो उनके अन्दर विषय-भोग की बाढ़ सी आजायेगी और कइयों का जीवन कालेज के लड़कों से भी बदतर होजायेगा; इससे आर्यों की प्राचीन संस्कृति बदनाम होजायेगी और लोग प्राचीन आदर्शों की खिल्ली उड़ाने लगेंगे। समाज का वातावरण ऋषिकुल और गुरुकुलों पर अपना विषैला प्रभाव डालकर उन्हें ग्रस लेगा और वे संस्थायें केवल नामरूप में प्राचीन रह जायेंगी, लेकिन उनके अन्दर सारा कारोबार उस विषैले व्यापार-युग के अनुसार होगा, जिसने पाश्चात्य देशों में कम्यूनिज़्म का बवण्डर खड़ा किया है। अतएव हमारा सबसे पहला काम लोगों की विचारधारा बदलने का है। जब तक हम अपने समाज को अपनी संस्कृति के अनुसार सङ्गठित नहीं कर लेते, तब तक हमारे सात्विक आदश किताबों में ही बन्द पड़े रहेंगे। प्राचीनकाल के आर्य इन सब बातों को समझते थे, इसीलिये उन्होंने पहले अपने समाज को अपने आदर्शानुसार सङ्गठित किया। पच्चीस वर्षों तक गृहस्थ करने के बाद वे तीसरे आश्रम को आरम्भ करने का आदेश देते थे ताकि लोग विषय-भोग की तृष्णा में न फँसें और गृहस्थ के बन्धन उन्हें न बान्ध लें।

तीसरा आश्रम होता था बनों में तपस्या करने का, प्रकृति के सौन्दर्य को निहारने का, एकान्तसेवन करने का और प्रयोग-शालायें बनाकर विद्यार्थियों को विद्यादान देने का। अपनी अपनी रुचि के अनुसार बानप्रस्थी अपने विभाग को उठा लेते थे। पहले

के बने हुए आश्रम और कुटियाँ उनका स्वागत करने के लिए तैयार रहती थीं। जो ऋषि-मुनि बानप्रस्थाश्रम को त्यागकर संन्यासी हो जाते थे, वे अपने स्थान रिक्त कर समाज-सेवा में व्रती हो जाते थे और चारों ओर घूमकर, परिब्राजक बन, सत्य ज्ञान का उपदेश जनता को देते थे। गृहस्थों के घर, बानप्रस्थियों के आश्रम और विद्यार्थियों की कुटियाँ हर समय इन परिब्राजकों के आगमन की राह ताकती रहती थीं ताकि वे अपने बोधजन्य मनोरञ्जक अनुभव उन्हें बतलायें और उनकी ज्ञानपिपासा शान्त करें। इस प्रकार वे आर्य जीवन के इन चार भागों को सफल बनाकर प्राकृतिक भोगों का यथायोग्य उपभोग कर सुखपूर्वक ज्ञानोपार्जन करने की शिक्षा देते थे। उन आर्यों का यही समाजवाद था, जिसमें किसी को भी भूखा रहने के लिये स्थान न था। आवश्यकताओं की कमी के कारण सभी बड़ी आसानी से एक दूसरे की सहायता कर सकते थे और धन-संग्रह की बीमारी उन के निकट नहीं आ सकती थी। उस समाजवाद में आदर मिलता है ज्ञानी को, ऊँचा स्थान प्राप्त होता है त्यागी को और नेतृत्व हासिल होता है समाज के सच्चे सेवक को। अधिक धन जमा कर दस पाँच नौकर रखने वाला, मोटरगाड़ियों पर चढ़ने वाला समाज का सम्मान नहीं पाता, जनता द्वारा प्रशंसित नहीं होता, विद्वानों द्वारा प्रतिष्ठित नहीं माना जाता; उसे सभी लोग बनिया, भोगी कहकर घृणा की दृष्टि से देखते हैं, तब उसका वह संगृहीत धन उसे काट खाने को दौड़ता है और वह उसे समाज के हित के

लिये ख़र्च कर स्वयं ही अपने पापों का प्रायश्चित्त करता है। न तो उसे रूसी डण्डे की जरूरत है और न सोशलिस्ट शासन की—पब्लिक ओपीनियन का डण्डा ही उसके लिये महान् शक्तिशाली और सर्वश्रेष्ठ शासक है, जो सामाजिक सदस्यों का विकास स्वाभाविक ढङ्ग पर कर सकता है। आवश्यकता इसी बात की है कि हम पहले समाज को सुधारें, उसे सुन्दर आदर्शों से विभूषित करें, उसमें निर्मल विचारधारा बहावें और उसकी संस्कृति का मूल स्तम्भ सादा ज़िन्दगी रक्खें; तब किसी प्रकार की प्रतिक्रिया उत्पन्न नहीं होगी, प्रतिहिंसा की अग्नि शान्त हो जायेगी और मानवीयता का शान्तिमय स्वराज्य स्थापित होगा। बौद्धकाल में यह आदर्श आजमाया जा चुका है और इस समाजवाद के मधुर फलों से सारा संसार परिचित है; प्राचीनकाल के आर्य तो इसके प्रवर्तक ही थे। यद्यपि समय बदल गया है, नवीन परिस्थितियाँ उत्पन्न होगई हैं, किन्तु नर-नारियाँ वैसी ही हैं जैसी कि पहले थीं। पुराने आजमाये हुए आदर्शों में नवीनता लाइये, उनके जर्जरित हिस्सों को निकाल दीजिये और उन्हें आधुनिक रूप देकर समाजवाद का गौरव बढ़ाइये, तभी श्रद्धा और प्रेम का वातावरण स्थापित होगा और मनुष्य समाज विनाश की ओर न जाकर सुन्दर रचनात्मक कार्य करेगा; तभी लाखों वर्षों की छिपी हुई समस्यायें अपना दैवी सन्देश सुनायेंगी और हम नभमण्डल के चमत्कारों को समझ सकेंगे।

कितना है हमको सीखने के लिये। अरे मनुष्य, फ़ज़ूल की बातों में पड़कर अपना अमूल्य समय मत खो; प्रतिहिंसा की आग में जलकर बदनामी मत ले। तेरा एक एक मिनट क़ीमती है और तुझे अनन्त की ओर जाना है। तेरी रोटी का प्रश्न केवल आवश्यकताओं की कमी का सिद्धान्त ही हल कर सकेगा। सबके भले में अपना भला मानकर, ईश्वर की सर्वव्यापकता में विश्वास रख, तू ज्ञानमार्ग पर चलाजा और अपनी सात्विक बुद्धि से वस्तुओं का निरीक्षण करना सीख। बुराई से बुराई पैदा होती है और नेकी से नेकी। तू कञ्जूस को उदारता से जीत सकेगा और व्यभिचारी को संयम से; बीमार को आरोग्यता से और क्रोधी को शान्ति से। इस प्रकार जीवन को आनन्दपूर्वक ज्ञानमार्ग पर चलाने के लिये आर्यों का यह समाजवाद सब प्रकार की जीवन-समस्याओं का सन्तोषजनक हल निकालता है। किन्तु भारतवर्ष की वर्तमान राजनीतिक अवस्था में किसी प्रकार की ऐसी सामाजिक व्यवस्था खड़ी नहीं की जा सकती। जब तक शासन का अधिकार हमारे हाथ में नहीं होगा, जब तक प्रजा का पैसा प्रजा के प्रतिनिधियों के हाथ में नहीं आयेगा, जब तक देश की रक्षा और उसकी सुव्यवस्था करने वाले सिपाही प्रजातन्त्र शासन के अधीन नहीं होंगे, तब तक किसी प्रकार की भी ऐसी क्रान्तिकारी सामाजिक योजना यहाँ पनप नहीं सकती; अलबत्ता संसार की स्वाधीन जातियाँ आर्यों की इस आश्रम-व्यवस्था का पूरा लाभ ले सकती हैं। भारतवर्ष तो ब्रिटिश राज्य के आधीन हैं, जो इसके धन-

जन-बल को अपने हितों के अनुकूल काम में ला रहा है और भविष्य में भी लायेगा, जब तक कि उसका शासन अक्षुण्ण बना रहेगा। हमें तो इस समय बड़ी शान्ति और धैर्य से अपने जन-साधारण को सबसे पहले जहालत से निकालना चाहिये, उन्हें पढ़ना-लिखना सिखाना चाहिये, सफ़ाई के नियम समझाने चाहिये और उनकी दैनिक क्रियाओं को प्रगतिशील बनाना चाहिये। नवीन वेदान्त की फ़िलासोफ़ी के कारण जो आलस्य, प्रमाद और भाग्य पर विश्वास करने की बीमारी यहाँ फैली हुई है, उसे दूर कर पुरुषार्थ की विचारधारा उन्हें देनी चाहिये। अभी हमारे लिये प्रारम्भिक कार्य बहुत हैं। पश्चिम का समाजवाद, कम्यूनिज़्म और बोलशिविज़्म उन्नतिशील मस्तिष्क के परिणाम नहीं, वे तो बिगड़े दिमाग़ के उबाल हैं। हमें अपनी संस्कृति के आधार पर अपना स्वराज्य स्थापित करना है; इसलिये हममें से जो समाज-सेवा पर आरूढ़ होना चाहते हैं, वे सबसे पहले अपने सांस्कृतिक रत्नों का संग्रह करें, फिर पश्चिम के संगठन और अनुशासन के सहारे पारस्परिक सहयोग द्वारा अपनी राजनीतिक स्वाधीनता लाभ करें। ब्रिटिश साम्राज्यवाद में यदि बुराइयाँ हैं तो वह अपने उन दोषों के कारण आप ही आप ख़त्म हो जायेगा। हमारे यहाँ का पूंजीवाद यदि प्रजा का शोषण करता है तो हम अपनी राजनीतिक समस्या को हलकर जब नई शासन-व्यवस्था कायम करेंगे तो प्रजा की सम्मत्यनुसार उन सब सामाजिक दोषों को हटा

सकेंगे, जिनको उस समय दूर करने की आवश्यकता होगी। ब्रिटिश सिंह की शक्ति को हमारे यहाँ की फूट से बल मिलता है, समाजवाद के कलह से पारस्परिक विद्वेषों की वृद्धि होती है, हम पार्टीबाज़ी के कीचड़ में फंसते हैं, हमारा ध्यान असली आदर्श से हट जाता है और हमारी शक्तियाँ बँटकर एक दूसरे का नाश करने लगती हैं; इसीलिये हम अपने देश के सोशलिस्टों, कम्यूनिस्टों और बोलशिविस्टों को चेतावनी देते हैं और उनसे यह निवेदन करते हैं कि वे ज़िद्द में न पड़कर ठण्डे दिल से बैठकर विचार करें। यदि उन्होंने अपना कोई स्वार्थ सिद्ध न करना होगा तो हमारी बात उनकी समझ में बड़ी आसानी से आ सकेगी और वे यह देख लेंगे कि पश्चिम का समाजवाद स्वयं पश्चिम में ही त्याज्य समझा जा रहा है और वहाँ के समझदार लोग पूर्व से सात्विक सन्देश पाने की आशा में बैठे हैं। हमें अपना वर्तमान काल का राजनीतिक प्रोग्राम निश्चित कर, सब सम्प्रदायों तथा वर्गों को एक सूत्र में बद्धकर, देश को पूर्ण स्वाधीनता की ओर ले जाना चाहिये। यदि हम इस आदर्श की अवहेलना कर वर्गों का युद्ध छेड़ देंगे, जातियों-उपजातियों के बीच हिंसावृत्ति पैदा कर देंगे और कठिन अनुशासन द्वारा चरित्र-संगठन का प्रयत्न न करेंगे तो हममें फूट की भयंकर बीमारी पैदा हो जायेगी और तब भारतवर्ष की स्वाधीनता का आदर्श स्वप्नमात्र हो जायेगा; तब यह अभागा देश टुकड़े टुकड़े होकर छोटे छोटे राष्ट्रों में विभक्त हो जायेगा और योरुप की तरह यह भी पारस्परिक युद्धों में व्यस्त रहा करेगा।

इसलिये आज इस परिवर्तन काल में जब प्रजा सोये से उठने लगी है, हमें बड़ी सावधानी से उसकी जागृति का लाभ लेना है और ऐसी शिक्षा उसे देनी है, जो उसे संयम और सभ्यता की ओर ला सके और इसकी सैकड़ों वर्षों की दासता के दुर्गुणों को दूर भगा सके। हमारा राजनीतिक स्वाधीनता का प्रश्न ऐसा जटिल और कष्टसाध्य है कि उसे हम अन्य नई समस्याओं द्वारा और भी अधिक पेचीदा नहीं बना सकते। एक राष्ट्र में बद्ध होने के लिये एक भाषा, एक संस्कृति, एक नस्ल और हितों की समानता आवश्यक है। भिन्न भिन्न भाषायें और संस्कृति रखने वाले लोग केवल शस्त्रशक्ति द्वारा ही एक झण्डे के नीचे रह सकते हैं। आस्ट्रिया ने भिन्न भिन्न प्रकार की जातियों और वर्गों को सदियों तक अपने साम्राज्य में रक्खा और अन्त में वह महाराष्ट्र छिन्न भिन्न होगया। आयर्लैंड सैकड़ों वर्षों तक ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत रहा, उन दोनों की भाषा भी एक होगई, शादी-विवाह भी आपस में होते रहें, वे घुल-मिल भी गये, तिस पर भी आयर्लैण्ड अपनी संस्कृति और भाषा को न त्याग सका। उसने अपनी मातृभाषा को जीवित किया और इङ्गलैण्ड से अलग होकर ही सन्तोष माना। रूस में सदियों से ज़ारशाही रही। वहाँ कई तरह की जातियाँ तथा वर्ग हैं और नाना प्रकार की भाषायें बोलने वाले भिन्न भिन्न धर्मावलम्बी हैं, किन्तु वे सब पशुओं की तरह हँकाये जा सकते थे, इसीलिये रूसी ज़ार उनके गड़रिये बनकर सदियों तक इतने विशाल रूसी साम्राज्य पर हकूमत करते

रहे। अब रूसी प्रजा चैतन्य हुई है। जब एक बार भी बोल-शिविक रूस किसी बड़ी लड़ाई में जूझेगा तो जुदा जुदा भाषायें और संस्कृति रखने वाले रूसी प्रान्त स्वाधीनता का झण्डा बुलन्द करेंगे और रूस छोटे छोटे राष्ट्रों में बँट जायेगा। भारतवर्ष की क्या दशा होगी, इसकी भविष्यवाणी नहीं की जा सकती, लेकिन हम यह चाहते हैं कि इसमें सम आदर्श और संस्कृति रखने वाले हिन्दू, जो उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम—चारों ओर—फैले हुए हैं, इस महाद्वीप में अपना महाराष्ट्र स्थापित करें। उनके पास मस्तिष्क और व्यवहारिक बुद्धि है; उन्हीं का प्राचीन इतिहास भी गौरवपूर्ण है; वे अपने धार्मिक मेलों में एक झण्डे के नीचे खड़े भी होते हैं; उन्होंने बौद्धकाल में एक महाराष्ट्र बनाकर अपनी संस्कृति का प्रचार सारे संसार में किया भी था और विश्व-इतिहास में उन्होंने ही धर्मविजय के सिद्धान्त को सफल करके दिखलाया था। वे यदि एक बार सङ्गठित होजायें, राजनीतिक स्वाधीनता पा लें और देश के शत्रुओं से अपनी रक्षा कर सकें तो वे आसानी से भारतीय महाद्वीप में एक विशाल महाराष्ट्र की स्थापना कर सकते हैं। मुसलमानों का मज़हब यद्यपि विदेशी है, लेकिन उनके बजुर्ग, उनकी भाषा और उनकी संस्कृति हिन्दुओं जैसी ही है; केवल शहरों में रहने वाले मुग़ल और पठान, विजेताओं के सम्पर्क में आने वाले घराने विदेशी संस्कृति और आदर्श रखते हैं, लेकिन वे सारी मुस्लिम आबादी में आटे में नमक के बराबर भी नहीं। इस अल्पसंख्यक मुसलमानी

वर्ग के साथ हम सारी मुस्लिम आबादी का गठबन्धन कर अपनी राजनीतिक समस्याओं को असम्भव बना लेते हैं। हमें चाहिये कि हम अपने देश की मुस्लिम आबादी को इन विदेशी मुग़ल अफ़ग़ान घरानों के विषैले प्रभाव से बचावें और स्वार्थी नेताओं के विकृत विचारों का असर उस पर न पड़ने दें। किस प्रकार यह सारा देश अखण्ड प्रजातन्त्र राज्य द्वारा सङ्गठित हो सकता है और किस प्रकार यहाँ की सारी आबादी सुखपूर्वक रह सकती है, इस सवाल को हमने बड़ी तपस्या से हल करना है। ऐसे काल में हम अपनी घुण्डियों को खोलने की बजाय विदेशी प्रश्नों का समावेश कर यदि उन्हें और भी मुश्किल बनाते हैं तो हमारे जैसा मूर्ख और कौन हो सकता है।

अच्छा, तो हमें अब करना क्या है? हमें अपने सब शिक्षणालयों में मानव-जीवनादर्श को सिद्ध करने वाले मज़मूनों को पढ़ाना चाहिये। जो भी पाठ्य पुस्तकें रची जायें, वे उन आदर्शों को अमली तौर पर मानने वाले विद्वानों द्वारा रची जानी चाहियें। जसे योरुप के स्वाधीन देश अपनी सारी विद्या-प्रणाली में राष्ट्रभक्ति को मुख्य रखते हैं, जैसे वे इसी तान को अपनी सारी शिक्षा-व्यवस्था में अलापते हैं और जैसे वे अपने साहित्य को एक ही नशे से ओतप्रोत करते हैं, हमारा समाजवाद कहता है कि हमें भी ज्ञान-प्राप्ति के मधुर रस से अपने सारे जीवन-विभागों को सना देना चाहिये। माता की शिक्षा से लेकर विश्व-विद्यालय की डिग्री प्राप्त करने तक अनन्त की खोज का ध्येय

छात्र के सामने स्पष्ट रहे; व्यवहारिक जीवन में आवश्यकताओं की कमी पर ज़ोर मिले; गद्य-पद्य में ऐसी ही कहानियाँ और उदाहरण विद्यार्थियों के सामने रक्खे जायें; सेवा और बलिदान द्वारा ज्ञान-मार्ग को प्रशस्त करने वाले वीरों को पुरस्कार मिलें। छोटी छोटी पुस्तिकाओं द्वारा कठिन प्राकृतिक और आध्यात्मिक समस्याओं को लोकप्रिय बनाया जाये तथा उनके हल सरल भाषा में समझाये जायें ; ज्ञान में जो सच्चा आनन्द है, उसका स्वाद जन-साधारण को चखाया जाये—जब इस प्रकार राष्ट्र का धन और उसकी शक्ति राष्ट्रीय नेता सत्यज्ञान की प्राप्ति में ख़र्च करेंगे तो समाज सात्विक रंग लायेगा। आवश्यकताओं को बढ़ाकर, गन्दे अश्लील सिनेमा दिखलाकर, चरित्रहीन उपन्यास पढ़ाकर शृंगार-रस की कवितायें गाकर, नये नये फ़ैशन सिखलाकर और हमारी ज़रूरतें बढ़ाकर रूस का समाजवाद केवल हमारे पशुपन को बढ़ा सकता है, हमारी हिंसावृत्ति को ही जगा सकता है, हमारे मनो-विकारों को ही भड़का सकता है—वह शान्ति का राज्य कदापि नहीं ला सकता। इसलिये हम पूर्व और पश्चिम की संस्कृतियों का सम्मिश्रण कर नये और उपयोगी ज्ञान-सूत्रों को मिलाकर ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करना चाहते हैं, जिसके द्वारा सामाजिक सदस्य प्रकृति पर विजय प्राप्त कर उस अमूर्त, अज्ञेय और अदृष्ट विश्व-आत्मा की खोज कर सकें, जो हमारे जीवन का असली उद्देश्य है।

संक्षेप में हमारा निवेदन यह है कि हमें चाहिये कि हम इन समस्याओं पर ठण्डे दिल से विचार करें। जो साधन हमारे पास हैं, उन्हें हस्तगत करें; जो ब्रिटिश शासन से हम धीरे धीरे प्राप्त कर रहे हैं, उनका उचित उपयोग करें और सदा आगे बढ़ने का प्रयत्न करते रहें। एकबारगी ही कोई काम न हो सकेगा। जब छोटे से आयर्लैण्ड को अपनी समस्या हल करने में इतनी जद्दोजहद करनी पड़ी तो हमारा तो बड़ा महाद्वीप है, इसे संगठित और स्वाधीन करने में कुछ समय तो लगेगा ही। अतएव हमें धैर्य रखकर, स्वार्थ को छोड़, राष्ट्रीय दृष्टिकोण से अपना प्रोग्राम बनाना चाहिये। उपयुक्त समय पर आर्यों का समाजवाद हमारा पथप्रदर्शक बनेगा और उसी का विकसित रूप सारे संसार में शान्ति लायेगा।

श्री पूज्यपाद स्वामी सत्यदेवजी परिव्राजक की
अद्भुत स्फूर्तिदायिनी लोह-लेखनी के अन्य चमत्कार

१. हिन्दू धर्म की विशेषतायें—केवल ।–) मूल्य की इस प्रचार-पुस्तक में श्री स्वामीजी ने हिन्दू धर्म को सब धर्मों से उत्कृष्ट बतलाते हुए यह सिद्ध कर दिया है कि हमारा धर्म किन अनुपम विशेषताओं के कारण संसार के सब धर्मों से श्रेष्ठतम है। प्रत्येक हिन्दूमात्र का यह कर्तव्य है कि वह इस पुस्तक को स्वयं पढ़कर अपनी सन्तान को इसे अर्थों सहित पढ़ावे ताकि उसे भी अपने धर्म का सौन्दर्य मालूम हो।

२. ज्ञान के उद्यान में—मनुष्य के जीवन का असली लक्ष्य है ज्ञान की प्राप्ति। वह संसार में आता है उत्तरोत्तर ज्ञानकी वृद्धि के लिये और प्रभु के अनन्त ज्ञान-भण्डार में अपना कुछ दत्तांश देने के लिये। वे कितने मूर्ख हैं, जो पशुवत् जीवन व्यतीत करते हुए अपने पथ से भ्रष्ट हो रहे हैं—इसी दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए श्री स्वामीजी ने चरित्र-सङ्गठन, राष्ट्रों के उत्थान का रहस्य, शिक्षा का आदर्श आदि ४० अत्यन्त उपयोगी विषयों पर बड़े विस्तार से प्रकाश डाला है। पुस्तक अत्यन्त उपादेय और संग्रहणीय है। ४५४ पृष्ठों के सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य केवल २) है।

३. यात्री-मित्र—यात्रियों की पथप्रदर्शक इस परमोपयोगी पुस्तक की समालोचना करते हुए मद्रास का प्रसिद्ध दैनिक पत्र "हिन्दू" लिखता है—

"Swami Satya Deva is well qualified to advise those who intend to travel extensively either in India or abroad; for he has travelled widely in different countries, he knows the needs and difficulties that occour to travellers. In this book he gives innumerable "tips" to intending travellers which we dare say, will be very useful to them." मूल्य ॥)

४. **योरुप की सुखद स्मृतियाँ**—श्री स्वामीजी ने चार बार योरुप-भ्रमण किया है। ये 'स्मृतियाँ' उनकी उन दो पिछली यात्राओं के सुखद संस्मरण है, जबकि श्री स्वामीजी ने वहाँ निरन्तर वर्षों रहकर वहाँ की राजनीति, संस्कृति और साहित्य का बड़े निकट सम्पर्क में आकर अध्ययन किया। ३४० पृष्ठों का यह उपन्यास के ढङ्ग का अत्यन्त मनोरञ्जक ग्रन्थ आपको यह बतलायेगा कि किस जादू के चमत्कार से नवीन जर्मनी के जन्मदाता हर हिटलर ने १९१८ के धराशायी जर्मनी को आज महान् शक्तिशाली राष्ट्र बना दिया है। टाइटल अत्यन्त आकर्षक और छपाई बढ़िया है। मू० १॥)

५. **सञ्जीवनी बूटी (प्रथम भाग)**—अपने ढङ्ग का यह एक अनूठा ग्रन्थ है। आरोग्यता के मूल तत्त्वों, वीर्यरक्षा और व्यायाम की व्याख्या इस पुस्तक में बड़ी सरल भाषा में की गई है। इस नये संस्करण में 'व्यायाम' और 'लहसुन' पर दो अध्याय और बढ़ा दिये गये हैं। मूल्य फिर भी वही ॥) रक्खा है।

६. **अमरीका-भ्रमण**—अमरीका में पैदल भ्रमण सम्बन्धी यह पुस्तक सचमुच एक उपन्यास है। अमरीका के बीहड़ और सर्द मैदानों में बिना किसी गर्म कपड़े के श्री स्वामीजी ने किस प्रकार रातें बिताईं, क्योंकर बिना किसी साधन के उन्होंने पैदल २३०० मील यात्रा की और किस अनुपम रूप से दयालु भगवान् ने कैसी कैसी भयानक परिस्थिति में, किसी महान आदर्श की पूर्ति-हेतु स्वामीजी की रक्षा की—इन सब रोमाञ्चकारी घटनाओं का सजीव वर्णन आपको इस पुस्तक में मिलेगा। मूल्य १)

७. **मेरी कैलाश-यात्रा**—मद्रास का "हिन्दू" दैनिक लिखता है—

"This small book is a diary of the author's arduous pilgrimage to the Holy Kailash. Swami Satya Deva wields a facile pen and sometimes he transports the reader and plants him right in the centre of the grand mountain scenery on the Himalayas by the vividness of

his descriptions. He narrates many an interesting anecdote and adventure on his journey, which give one a clear idea of the thrills as well as the difficulties of mountaineering on the Himalayas." मूल्य ।।।)

८. लेखन-कला—हिन्दी-साहित्य में ऐसे ठोस साहित्य की बड़ी कमी है, जो कि हिन्दी माता का मस्तक ऊंचा करे और उसका गौरव बढ़ावे। लेखन-कला की यह पुस्तक वर्षों पहले प्रकाशित हुई थी और हज़ारों विद्यार्थियों ने इस अत्यन्त उपयोगी पुस्तक से लाभ उठाया था। आज भी इसकी टक्कर का कोई ग्रन्थ हिन्दी-संसार में नज़र नहीं आता। स्कूलों में इसका टेक्स्ट बुक होना अत्यन्त आवश्यक है। इस नये संस्करण में 'लेखक के कर्तव्य' और 'साहित्य-सेवियों के आदर्श' शीर्षक दो अध्याय और बढ़ा दिये गये हैं। मूल्य केवल ।।-)

९. Gospel of Indian Freedom—श्री स्वामी जी की यह अंग्रेज़ी भाषा में पहली कृति है। भारतीय स्वाधीनता का सन्देश सुनाते हुए स्वामी जी ने इसमें देश की पराधीनता के मुख्य कारणों पर प्रकाश डाला है और यह बतलाया है कि जब तक भारतवर्ष में रूढ़िवाद, प्रमाणवाद अन्धभक्तिवाद और सम्प्रदायों की आन्धियाँ उठती रहेंगी, तब तक यह देश कभी भी स्वाधीनता देवी के दर्शन नहीं कर सकता। पुस्तक स्वामी जी की अपनी ओजस्विनी शैली में लिखी गई है। आप इसे एक बार अवश्य ही पढ़िये। मूल्य भी कोई अधिक नहीं; केवल ।।।)

१०. देव-चतुर्दशी—देश-विदेश की सच्ची घटनाओं के आधार पर लिखी गई श्री स्वामी जी की अपनी चौदह कहानियों का यह अनूठा संग्रह है। ३३१ पृष्ठों की इस पुस्तक का दाम केवल १)

११. मेरी जर्मन यात्रा—यह यात्रा-ग्रन्थ १९२३ के धराशायी जर्मनी की ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन पाठकों को सुनाता है। मूल्य १)

१२. **अनुभव**—इस पुस्तक में संस्कृत और हिन्दी के अधिकाँश छन्दों के आधार पर सुन्दर कवितायें लिखी गई हैं। छन्द अत्यन्त उपदेशप्रद और कण्ठाग्र करने योग्य हैं। मूल्य ।=)

१३. **राष्ट्रीय सन्ध्या**—राष्ट्र के स्वयंसेवक को किस प्रकार की सन्ध्या सायं-प्रात: करनी चाहिये और नवीन स्फूर्ति पैदा करने के लिये उसे कौन से गीत गाने चाहियें? इन सब प्रश्नों का सही उत्तर यह हमारी पुस्तक पाठकों को देगी। मूल्य केवल ~)। प्रचारार्थ ५) में १००

प्रेमी पाठकों को शुभ सूचना

अपने प्रेमियों की सुविधा के लिये हमने अपने ग्रन्थ **ए० एच० व्हीलर एण्ड को० के स्टेशन-बुक-स्टालों** पर रखवा दिये है तथा निम्न एजण्टों के पास भी इनके मिलने का प्रबन्ध कर दिया है।

१. शारदा मन्दिर लिमिटिड, नई सड़क, देहली।

२. पुस्तक-भण्डार, गुरुकुल काँगड़ी (यू० पी०)।

३. वैदिक पुस्तकालय आर्य समाज, देहली क्लाथ मिल, देहली।

नोट—५) की पुस्तकें मंगानेवालों को डाक-खर्च नहीं देना पड़ेगा।

निवेदक—

सत्यप्रकाश शास्त्री,

मैनेजर—सत्यज्ञान-निकेतन,

ज्वालापुर (यू. पी.)